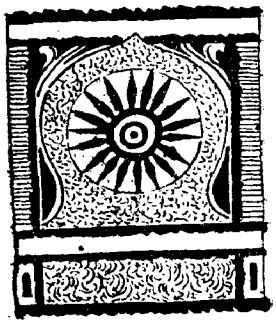

डा० गुलाबचन्द्र चौधरी
एम० ए०, पी-एच० डी०
प्रोफेसर, प्राकृत जैन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मुजफ्फरपुर

आर्यों से पहले की भारतीय संस्कृति

जब से सिन्धु घाटी की खुदाई हुई है और पुरातत्त्व विभाग ने एक विशिष्ट सभ्यता की सामग्री उपस्थित की है; तब से हमें आर्यों के आगमन से पूर्व की भारतीय स्थिति जानने की परम जिज्ञासा उत्पन्न हुई है और लगभग चार पीढ़ियों से विद्वद्गण उस सुदूर अतीत को जानने के लिये प्रयत्नशील हैं. भारतीय इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन जब शिशु अवस्था में था, तभी विद्वानों ने इसके विवेचन का कुछ गलत तरीका अपना लिया था. वे इस पृथ्वीतल पर डार्विन के प्राणि-विकासवाद के अनुसार बन्दर से मनुष्य की उत्पत्ति बतला कर भारत में आदि सभ्यता का दर्शन वेदकाल से मानते थे. यह सत्र था कि तब उनके पास इतिहास जानने के साधन ही कम थे तथा विश्व के सर्व प्रथम साहित्य के रूप में वेद ही उनके सामने थे. पर आज भारतवर्ष के वेदकालीन और उसके पश्चात् युग के सांस्कृतिक इतिहास को जानने के लिये प्रचुर लिखित साहित्य ही नहीं बल्कि विशाल पुरातत्त्व सामग्री उपलब्ध है, तथा आर्यों के आगमन के पूर्व की प्राग्वैदिक भारतीय संस्कृति के ज्ञान के लिये भी विद्वानों ने अनेक साधन जुटा लिये हैं.

आज विद्वान् लोग जिन साधनों का आश्रय ले कर उस सुदूर अतीत का चित्र उपस्थित करते हैं वे मुख्यतः तीन हैं : (१) **मानववंश विज्ञान** (Anthropology), (२) **भाषाविज्ञान** (Philology), तथा (३) **पुरातत्त्व** (Archaeology) प्रथम **मानववंश विज्ञान** द्वारा मनुष्य के शरीर का निर्माण तथा विशेषकर मुख-नासिका के निर्माण का अध्ययन कर विविध मानव शाखाओं की पहचान की गई है. इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि आज ही नहीं बल्कि सुदूर अतीत में भारत की जातियों का निर्माण अनेक मानव शाखाओं के संमिश्रण से हुआ है. यह संमिश्रण वेदकाल से ही नहीं बल्कि सिन्धु घाटी की सभ्यता से भी प्राचीन काल से है. द्वितीय **भाषा विज्ञान** ने भाषा के विविध अंगों के विकास के अध्ययन के साथ विविध संस्कृतियों के प्रतिनिधि शब्दों को खोज निकाला है और उन संस्कृतियों के आदान-प्रदान तथा संमिश्रण के इतिहास जानने की भूमिका प्रस्तुत की है. भाषा विज्ञान से तत्कालीन समाज की विचारधारा और सांस्कृतिक स्थिति का भी पता लगता है. तृतीय **पुरातत्त्व** सामग्री, इतिहास का एक दृढ़ आधार है. जहां अन्य ऐतिहासिक साधन मौन रह जाते हैं या धुंधले दीखते हैं वहां इस पुरातत्त्व की गति है, यह अन्य निर्बल से दीखने वाले प्रमाणों में सबलता प्रदान करता है. इस पुरातत्त्व की प्रेरणा से हम भारतीय संस्कृति के आर्येतर आधारों को खोजने में समर्थ हुए हैं.

भारतीय इतिहास को जब हम विश्व-इतिहास का एक भाग मानकर अध्ययन करते हैं तथा विशेषकर निकट पूर्व (Near East) से संबंधित कर वेदों का अध्ययन करते हैं तो मानव-इतिहास की अनेक समस्याएँ सहज में सुलझ जाती हैं. वेदों में वर्णित घटनाओं का मतलब निकट पूर्व (Near East) की घटनाओं से मालूम होता है. इन घटनाओं से विद्वानों ने सिद्ध किया है कि आर्य लोग भारत में बाहर से आये हैं. उन्हें बाहर से आने पर दो प्रकार के शत्रुओं से सामना करना पड़ा. एक तो **व्रात्य** कहलाते थे जो कि सभ्य जाति के थे. दूसरे थे **दास** और **दस्यु** जो कि आर्येतर जाति के थे. ये नगरों में रहने वाले लोग थे. वेदों में इनके बड़े-बड़े नगरों (पुरों) का उल्लेख है. इनमें से जो व्यापारी थे वे **गणि** कहलाते थे ; जिनसे आर्यों को अनेक अवसरों पर युद्ध करना पड़ा था. ऋग्वेद में **दिवोदास** और **पुरुकुत्स** का उन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरों के स्वामियों से युद्ध का वर्णन है. ऋग्देव (७-१८) में **दिवोदास** के पोत्र **सुदास** द्वारा एक शत्रुदल के पराजय का वर्णन है, उसमें निम्नलिखित जातियों **तुर्वसु, मत्स्य, भृगु, द्रुह्यु, पक्थ, मलानस्, अलिनस्, शिव, विषाणिन्, वैकर्ण अनु अज, शिग्रु और यक्षु** का उल्लेख है. इन जातियों के संबन्ध में विद्वानों को बहुत कम मालूम है. **श्री हरित कृष्णदेव** ने इनमें से बहुत कुछ जातियों की पहचान मिश्रदेशीय रिकार्डों से की है. उनके कथनानुसार ये बारहवीं शताब्दी ई० पूर्व की **मध्य-एशिया** की जातियां थीं, तथा कुछ द्रविड़ों की सजातीय और कुछ आर्यों की सजातीय थीं.

वेदरचना की पूर्ववर्ती तिथि यदि इन घटनाओं के आसपास मानी जाय तथा उत्तरवर्ती तिथि अवेस्ता के प्राचीन भागों की रचना सातवीं शता० ई० पूर्व और अखेमेनियन राजाओं के प्राचीन फारसी में लिखे गये अभिलेखों की, जिनसे वैदिक भाषा का बहुत कुछ मिलान होता है—तिथि छठी शता ई० पूर्व मानी जाय तो हम वेदरचना का समय दसवीं ईसा पूर्व कह सकते हैं. इसी समय आर्य लोग समूहों (ग्रामों) में भारत आये थे. मिश्र और चाल्डिया के प्रागैतिहास और इतिहास की घटना की तुलना में आर्यों के आने की घटना कोई बहुत प्राचीन नहीं बैठती. कतिपय विद्वान आर्यों के आगमन की बात ज्योतिष गणना के अनुसार बहुत सुदूर प्राचीन काल में ले जाते हैं पर उस ज्योतिष गणना की व्याख्या वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर की जाय तो आर्यों के आगमन का समय बहुत बाद बैठता है. इसीलिए वैदिक काल की तिथि के निर्णय के लिये हमारे पास सुरक्षित पक्ष **भाषाविज्ञान** और **पुरातत्त्व** ही हैं. कुछ विद्वान् आर्यों का भारत में बाहर से आना नहीं मानते. वे इन्हें यहीं का निवासी मानते हैं पर उनका यह कथन अनुमानाश्रित है. **मानववंश विज्ञान** और **भाषाविज्ञान** के अध्ययन से उनका यह मत पुष्ट नहीं होता.

आर्यों के बाहर से आने की घटना कोई कल्पित नहीं है तथा उसका उल्लेख भी वेदों तक ही सीमित नहीं. वह ऐसी घटना है जिसकी ध्वनि बाद के साहित्य में भी मिलती है. संस्कृत **पुराणों** में असुरों की उन्नत भौतिक सभ्यता का तथा बड़े-बडे प्रासाद और नगर बनाने की कला का उल्लेख है. ब्राह्मण, उपनिषद् और महाभारत आदि परवर्ती साहित्य में असुरों की अनेक जातियों का उल्लेख हैं जैसे **कालेयनाग** आदि. ये सारे भारत में फैले थे. इनके अनेक स्थानों पर बड़े-बड़े किले थे. युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का मण्डप इसी **असुर** जाति के **मय** नामक व्यक्ति ने बनाया था. **महाभारत** और **पुराणों** में ब्राह्मण-क्षत्रियों के साथ अनार्य नाग और दासों के विवाह के अनेक उल्लेख मिलते हैं. ये शान्तिप्रिय, उन्नतिशील और व्यापारी थे. अपने इन उपायों से ये भौतिक सभ्यता में बहुत बड़े चढ़े थे.

इन पर भौतिक सभ्यता से पिछड़ी पर युद्धप्रिय एवं उद्यमशील तथा समृद्ध भाषा से सम्पन्न आर्य जाति ने आक्रमण प्रारम्भ किया. उन्हें भौतिक सभ्यता के वैभव सुख में पली सुकुमार अनार्य जाति को जीतना कठिन प्रतीत नहीं हुआ और बड़ी सरलता से उसे उन्होंने वश में कर लिया. आर्यों के भारत में प्रबल दो आक्रमण हुए ऐसा विद्वानों का अनुमान है. आर्य लोग प्रायः झुण्डों (ग्रामों) में आये थे एवं अपने साथ बड़ा पशुधन तथा आशुगामी अश्वों के रथ लाये थे. वे प्रकृतिपूजक थे तथा उन्हें होम और यज्ञ के रूप में पशुबलि, यव, दूध, मक्खन और सोम चढ़ाते थे. वे अपनी पूर्व निवासभूमि—**लघु एशिया** (Asia minor) और **असीरिया बाबुल** से कुछ धार्मिक मान्यताएं, कुछ कथा इतिहास (प्रलय कालीन जलप्लावन) आदि भी साथ में लाये थे. उनका जातीय देवता **इन्द्र** था जो कि बाबुल के देवता **मर्दुक** से मिलता-जुलता है. अपनी समृद्ध भाषा से अनार्यों को विशेष प्रभावित किया था.

आर्यों ने यहाँ बसकर यहां के निवासियों को ही अपने में परिवर्तित नहीं किया बल्कि स्वयं बहुत हदतक उनमें परिवर्तित हो गए. आर्य संस्कृति के निर्माण में आर्यों की अपेक्षा अनार्यों का बड़ा भाग है. जब अनार्य, आर्यों में सम्मिलित हुए तो उस जाति के समृद्ध कवियों ने आर्यभाषा में अपने भी भाव व्यक्त किये, पद रचनायें कीं. उन्होंने अपने दार्शनिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कथानक, आख्यान आदि सामग्री को आर्य भाषा में प्रकट करना शुरू किया जैसे कि आज का भारतीय अपने साहित्य को अंग्रेजी में प्रकट करता है. उससे आर्य साहित्य में अनार्य संस्कृति का बहुत बड़ा भाग आ गया. अनार्य साहित्यिकों ने आर्यों की भाषा को सम्भाला, सुधारा. दो प्रबल संस्कृतियों के संघर्ष का परिणाम ही यह होता है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का कहना है कि : 'आज की नूतन सामग्री और नवीन उद्धार कार्य बतलाते हैं कि भारतीय सभ्यता के निर्माण में न केवल आर्यों को श्रेय है बल्कि उनसे पहले रहने वाले अनार्यों को भी है. अनार्यों का इस सभ्यता के निर्माण में बहुत बड़ा हिस्सा है. अनार्यों के पास आर्यों से बहुत बढ़ी-चढ़ी भौतिक सभ्यता थी. जब आर्य बेघरबार के लुटेरे थे तब अनार्य बड़े-बड़े नगरोंमें रहते थे. भारतीय धर्म और संस्कृति की अनेक परम्पराएं रीति-रिवाज, प्राचीन पुराण और इतिहास अनार्य भाषाओं से आर्य भाषा में अनूदित किये हैं क्योंकि आर्य भाषा ऐसी थी जो सर्वत्र छा गई थी. तथापि उसकी शुद्धि कायम न रह सकी क्योंकि उसमें अनेक अनार्य शब्द मिल गये हैं.

मानव वंश-विज्ञान के अध्ययन से भारत की भूमि पर प्रथम जिस अनार्य जाति का पता चला है, वह है **कृष्णांग** (Negrito). बन्दर से विकसित हो उत्पन्न होने वाली किसी जाति का यहां पता नहीं चला. कृष्णांगों की सन्तान आज भी अन्दमान द्वीपों में पाई जाती है. उनकी भाषा का विश्व की किसी भाषा-शाखा से संबंध नहीं. पहले ये अरब-सागर से चीन तक फैले हुए थे. पर अब वे या तो खतम कर दिये गये या दूसरी मानव शाखा के लोगों ने उन्हें अपने में पचा लिया. यत्र-तत्र बिखरे शेष लोगों से उनकी सुदूर अतीत की संस्कृति का अनुमान लगाना संभव नहीं. कहा जाता है कि उनके उत्तराधिकारी बलोचिस्तान में पाये जाते हैं तथा दक्षिण भारत की मुख्य जंगली जातियों में उनका जातीय गुण मिलता है. तिब्बत, बर्मा की नागा जाति के रूप में भी उनका अस्तित्व है. चूंकि यह जाति बहुत प्राचीन युग की है इसलिए बाद की सभ्यता में इसकी क्या देन रही है, यह कहना बड़ा कठिन है. यह जाति अपने पीछे आने-वाली शक्ति-शालिनी मानव शाखाओं से अपनी संस्कृति को बहुत कम बचा सकी. अजन्ता के एक चित्र में **कृष्णांग** जाति का चिन्ह मिलता है.

कृष्णांग जाति के बाद पूर्व की ओर से **आग्नेय** (Austric) जाति आई. इनकी भाषा, धर्म और संस्कृति का रूप हिन्द चीन में मिलता है. इस जाति की संतानें और भाषा प्रशान्त महासागर के द्वीप-पुंजों में मिलती हैं. ये असम से भारत भूमि पर आये और यहां आकर कुछ तो कृष्णांग जाति में मिल गये और कुछ भारत के समृद्ध प्रदेशों में अपने से पीछे आनेवाली जातियों द्वारा पचा लिये गये. इस जाति का अवशेषरूप **खासी, कोल, मुण्डा, संथाल, मुन्दरी, कुर्कु** और **शबर** आदि जातियां हैं. एक समय था जब कि इस जाति के लोग सारे उत्तर भारत, पंजाब और मध्यभारत तक फैल गये थे तथा दक्षिण भारत में भी घुस गये थे. उत्तर भारत के विशाल नदियों के कछारों में बस जाने में इन्हें बड़ी सुविधा हुई. **गंगा** शब्द की व्युत्पत्ति **आग्नेय** भाषा के **खांग, कांग** आदि नदीवाचक शब्दों से कही जाती है. आर्यों की पद-रचना, ध्वनि और मुहावरों पर इनकी भाषा का बड़ा प्रभाव है. आर्यों ने इनके सम्पर्क में आकर अपनी भाषा के रूप को बदला है. ये भौतिक सभ्यता में बहुत बढ़कर थे. इनकी संस्कृति के अनेक स्तर थे जो मध्यभारत की उच्च विषम भूमियों में रहते थे या जो आर्यों के दबाव के फलस्वरूप भागे थे वे अब भी अविकसित हालत में हैं पर जो उत्तर भारत के मैदानों में रहते थे उनकी संस्कृति का अवशेष परिवर्तित आर्यीकरण के रूप में अब भी विद्यमान है. **आर्य-संस्कृति** और **आग्नेय संस्कृति** का आदान-प्रदान विशेषतः भारत के पूर्वीय प्रान्तों में हुआ है. आर्यों ने इनसे चावल की खेती करना सीखा. नारियल, केला, ताम्बूल, सुपाड़ी, हलदी, अदरक, बैंगन, लौकी आदि का उपयोग आग्नेयों की देन है. कोरी अर्थात् बीसी की गणना तथा चन्द्रमा से तिथि की गणना आग्नेय है. वे अपने मृतकों की पाषाण समाधि बनाते थे. उनके यहाँ परलोक की मान्यता थी तथा वे विश्वास करते थे कि आत्मा अनेक पर्यायों (हालतों) में जाती है. उनकी इस विचारधारा से आर्यों को पुनर्जन्म का सिद्धान्त मिला. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी लिखते हैं कि आर्यों ने अनार्यों से 'कर्म तथा परलोक सिद्धान्त को, योगसाधना, शिव, देवी के रूप में परमात्मा को मानना, वैदिक होमविधि के मुकाबिले उनकी पूजाविधि अपनाई'.

ईसा के हजारों वर्ष पूर्व, आर्यों के आने से अवश्य बहुत प्राचीन काल में पश्चिम भारत से **द्रविड़** लोग आए. यह जाति आजकल दक्षिण भारत के बहुभाग में है पर आधुनिक खोजों से सिद्ध है कि **द्रविड़ों** का मूल निवासस्थान पूरबी भूमध्यसागर के प्रदेश हैं. **लघु एशिया** के एक अभिलेख में वहां की जाति का नाम **'त्रमिल्ली'** लिखा है जो **तामिल**

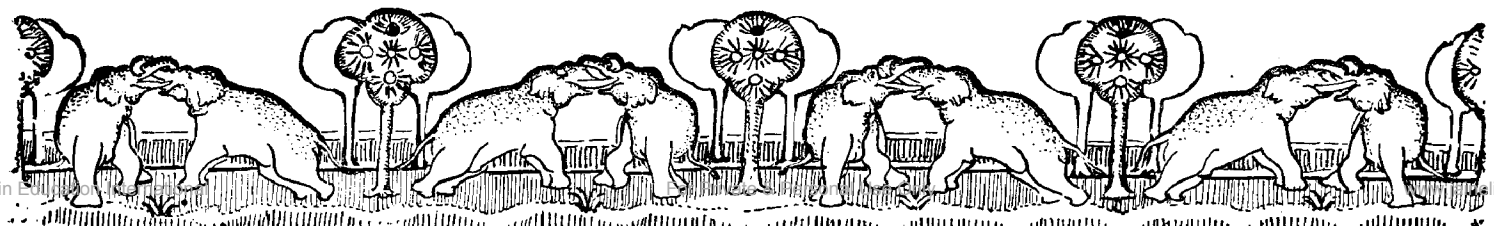

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द का प्राचीन रूप मालूम होता है. द्रविड़ों का पुराना नाम **द्रामिल** भी है जो **तामिल** और **त्रमिल्ली** का मूलरूप है. इन लोगों की सभ्यता नगर-सभ्यता के रूप में विकसित हुई थी. इनकी प्राचीन सभ्यता के अवशेष **दजला-फुरात** नदियों की घाटी से सिन्धु घाटी तक मिलते हैं. **द्रविड** लोग व्यापार में समृद्ध थे तथा आदान प्रदान की वस्तुओं का निर्माण करते थे. जौ, गेहूँ और कपास की खेती करते थे, कताई और बुनाई की कला का विकास चरमसीमा पर था. वे हाथी, ऊंट, बैल और भैंस को रखते थे तथा घोड़े पर सवारी करना जानते थे पर वाहन के रूप में घोड़े के रथ की जगह बैलगाड़ी का विशेष प्रयोग करते थे. उपलब्ध मिट्टी के खिलौनों और मूर्तियों से मालूम होता है कि उस समय दुर्गा, शिव और लिंग की पूजा प्रचलित थी, कितनी ही कायोत्सर्ग जैनमूर्तियां भी उस काल की पुरातत्त्व सामग्री से निकली हैं. वे अपने देवता की पूजा, फल-फूल चन्दन आदि से करते थे. बलि नहीं चढ़ाते थे.

जबकि आर्य बहुत बड़ी संख्या में आकर **पंजाब** में व्यवस्थित हो रहे थे. तब द्रविड़ भारत में छोटे बड़े राज्यों में विभक्त थे. आग्नेयों को पराक्रान्त कर इन्होंने **मगध** और **कामरूप** में राज्य जमाये तथा दक्षिण में **कलिंग, केरल, चोल**, और **पाण्ड्य** देशों में. द्रविड़ों ने बहुत पहले अपने जहाजी बेड़े का विकास किया था तथा दक्षिण भारत, लंका और हिन्द द्विपपुंजों में उपनिवेश स्थापित किये थे. डा० कर्न का कहना है कि **सुमात्रा** को सबसे पहले उपनिवेश बनाने वाले द्रविड़ ही थे. **सिन्धु घाटी** की खुदाई से जिस सभ्यता के अवशेष मिले हैं, उसके विधाता द्रविड़ थे—ऐसा विद्वानों का मत है.

आर्यों से ठीक पहले की जाति होने से वेदों में इनकी विविध जातियों का उल्लेख मिलता है सो कह चुके हैं. इनसे ही सीधे संघर्ष होने की घटनाएँ वेद और पश्चात् कालीन साहित्य में हैं. आर्यों ने वेदों में दस्यु, अनास, मृध्रवाक्, अयज्वन्, अकर्मन, अन्यव्रत आदि घृणा पूर्ण शब्दों से इन्हीं अनार्यों का उल्लेख किया है. आर्यों ने इनसे पृथक् बने रहने के लिए 'वर्णभेद' बनाया.

वैदिक साहित्य सारे भारत के सांस्कृतिक इतिहास का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, क्योंकि वह एक देशीय अर्थात् विशेषकर पंजाब, दिल्ली के आसपास का साहित्य है. वह उस **याज्ञिक संस्कृति** के उपासकों की कृति है जो दूसरी संस्कृति के उत्कर्ष के प्रति अति असहिष्णु थे. उन्होंने भारत के मध्यभाग और पूर्वभाग में प्रचलित अहिंसक संस्कृति-**श्रमणसंस्कृति** को धक्का दिया. श्रमण और याज्ञिक संस्कृति के संघर्ष के प्रकीर्णक उल्लेख ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों में मिलते हैं. श्रमण-संस्कृति के सूचक **अर्हन्, श्रमण, यतयः, मुनयः वातरसनाः व्रात्य, महाव्रात्य** आदि शब्द वैदिक साहित्य में पाये जाते हैं. श्रमणों के प्रतिनिधि **ऋषभदेव, अजितनाथ, अरिष्टनेमि** का उल्लेख भी वेदों में मिलता है. **अथर्ववेद** के १५ वें अध्याय में **व्रात्यों** का विशेष वर्णन आया है. सामवेद और कुछ **श्रौतसूत्रों** में **व्रात्यस्तोमविधि** द्वारा उन्हें शुद्ध कर वैदिक परम्परा में सम्मिलित करने का भी वर्णन है. व्रात्य लोगों की संस्कृति व्रतमूलक थी. ये यज्ञमूलक संस्कृति के परम विरोधी थे. मनुस्मृति के दसवें अध्याय में लिच्छवि, नाथ, मल्ल आदि क्षत्रिय जातियों को व्रात्यों में गिनाया है. इन का दर्शन समत्व या श्रम-तपस्या, कायक्लेश आदि कर्म-क्षय करने पर आश्रित था.

मालूम होता है कि इस **श्रमण-संस्कृति** के उपासकजन आर्यों के आगमन के पूर्व के **द्रविड़ जाति** या उसके पूर्व जाति वंशधर लोग रहे होंगे, जिनकी पूजा उपासना, दार्शनिक मान्यता, कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्म, आत्मा की पर्यायें होना, सभ्यता के अन्य अंग श्रमण-संस्कृति के प्राक्तन रूप ही हैं. यह संस्कृति चारों तरफ भारत में फैली थी. तामिल भाषा के प्राचीन से प्राचीन साहित्य इससे प्रभावित थे. अब तक उस संस्कृति की परिचायक पुरातत्त्वादि सामग्री का ठीक-ठीक अनुसंधान नहीं हुआ है. सिन्धु घाटी की खुदाई से जो कुछ प्रकाश पड़ा है तथा गंगाघाटी की खुदाई से जो प्रकाश पड़ने की संभावना है ये दोनों अवश्य ही **आग्नेय, द्रविड़** आदि द्वारा उपास्य **श्रमण-संस्कृति** पर प्रकाश डालेंगे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org